यंस और वेद

सायंस और वेद

श्री वैद्य रामगोपाल जी शास्त्री स्मारक समिति के
तत्त्वावधान में आयोजित

वेद-गोष्ठी-समारोह

के अवसर पर पठित निबन्ध
अक्तूबर १९७९

व्याख्याता—गुरुदत्त एम० एस-सी०

सायंस और वेद

व्याख्याता—गुरुदत्त एम० एस-सी०

शाश्वत संस्कृति परिषद् द्वारा प्रकाशित
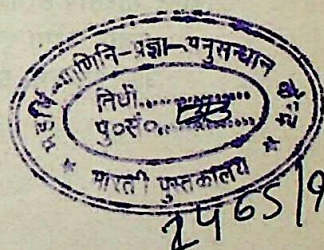
शाश्वत संस्कृति परिषद का उद्देश्य

विशुद्ध भारतीय तत्त्वदर्शन पर सम्यक् गवेषणा करना तथा उसका प्रचार करना एवं उसके आधार पर राष्ट्र के सम्मुख उपस्थित सभी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना।

सामान्य-कथन

मूल विषय पर कुछ कहने से पूर्व कुछ-एक बातों पर प्रकाश डाल देना मैं आवश्यक समझता हूँ तथा उनके विषय में अपनी धारणा का स्रोत स्पष्ट कर देना चाहता हूँ।

1. सायंस तथा सांख्य दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। इन दोनों शब्दों का उच्चारण तथा भाव भी लगभग समान है। सायंस (Science) शब्द के अन्तिम दो अक्षर 'सी' और 'ई', सांख्य शब्द के अक्षर 'ख्य' के समान ही बोले जाते हैं। अंग्रेज़ी में 'सी' का उच्चारण 'क' भी होता है।

इस समानता पर भी दोनों में अन्तर है। सांख्य के विवेच्य विषय का क्षेत्र सायंस के विवेच्य विषय के क्षेत्र से कहीं अधिक है। अभिप्राय यह है कि सांख्य में सायंस से अधिक विषयों पर विवेचना की गयी है।

सायंस केवल इन्द्रियों से जाने जा सकने योग्य पदार्थों का वर्णन करती है। और सांख्य इन्द्रियों से जाने जा सकने योग्य पदार्थों के साथ-साथ इन्द्रियातीत पदार्थों का भी वर्णन करता है।

इन्द्रियों से जाने जा सकने योग्य पदार्थों को व्यक्त पदार्थ अर्थात् 'विशेष' कहते हैं। इन 'विशेषों'—का वर्णन ही सायंस में है।

जो पदार्थ इन्द्रियातीत हैं अर्थात् इन्द्रियों से नहीं जाने जा सकते, उनको अव्यक्त पदार्थ अर्थात् 'अविशेष' कहते हैं। अभिप्राय यह कि जहाँ सायंस केवल 'विशेषों' का वर्णन करती है, वहाँ सांख्य विशेषों के साथ-साथ 'अविशेषों' का भी वर्णन करता है।

'विशेषों' के वर्णन से जो कुछ कहा जाता है, वह विज्ञान है। और जो वर्णन 'अविशेषों' का है अर्थात् उन पदार्थों का है जो इन्द्रियातीत हैं, उनको ज्ञान कहते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि जहाँ सायंस केवल विज्ञान का दर्शन कराती है, वहाँ सांख्य विज्ञान तथा ज्ञान, दोनों का दर्शन कराता है।

इसी भाव का वर्णन वेद में भी है। यजुर्वेद के मन्त्र हैं :—

अन्धं तमः प्र विशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूयऽइव ते तमो यऽउ विद्यायाᳩ रताः॥
अन्यदेवाहुर्विद्यायाऽ अन्यदाहुरविद्यायाः।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे॥
विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयᳩ सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥

यजुः ४०-१२, १३, १४॥

इन मन्त्रों का अर्थ है—

जो अविद्या [अनित्य पदार्थों] की उपासना [ज्ञान प्राप्त] करते हैं, वे अन्धकार में विचरते हैं और जो [सीमा से अधिक] बहुधा विद्या [नित्य पदार्थों] में ही लीन रहते हैं, वे भी अन्धकार में जाते हैं।

इस कारण नित्य और अनित्य पदार्थों [विद्या और अविद्या] के विषय में जो कुछ [पूर्व कल्प के] विद्वान् हमें कह गये हैं, उनकी बात को सुनना चाहिये।

जो दोनों, नित्य तथा अनित्य पदार्थों को साथ-साथ जानते हैं, वे अनित्य पदार्थों के ज्ञान से इस संसार को पार कर जाते हैं। [अर्थात् सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं।] और नित्य पदार्थों के ज्ञान से जन्म-मरण से छूट जाते हैं।

परन्तु सायंस नित्य पदार्थों के विषय में कुछ नहीं बताती। सायंस तो अनित्य पदार्थों के विषय में भी, केवल उनके विषय में बताती है, जो इन्द्रियगोचर हैं।

यदि सूक्ष्मतम पदार्थ से स्थूलतम पदार्थ तक पदार्थों की श्रेणियाँ क्रमवार लिखी जायें तो वे इस प्रकार होंगी :—

(१) परमात्मा, (२) जीवात्मा, (३) मूल प्रकृति, (४) महत्, (५) अहंकार, (६) तन्मात्र समूह, (७) पंच महाभूत तथा (८) संसार के चराचर पदार्थ।

इन आठ श्रेणियों में वह सब कुछ आ गया है जो इस चराचर जगत् में है।

यह हम ऊपर बता चुके हैं कि वर्तमान सायंस केवल इन्द्रियगोचर पदार्थों का ही वर्णन करती है और ऊपर दी गई श्रृंखला में प्रथम तीन तो नित्य (अव्यक्त) पदार्थ हैं। अर्थात् वे सदा रहते हैं। उनके ज्ञान को वेद ने विद्या कहा है। वर्तमान भाषा में ज्ञान कह सकते हैं।

ऊपर कही श्रृंखला में 'महत्' से लेकर चराचर पदार्थों तक सब अनित्य पदार्थ हैं। इनके भी दो भाग किये

जा सकते हैं। एक वे पदार्थ जो अव्यक्त हैं और दूसरे वे जो व्यक्त हैं। यह हम ऊपर बता चुके हैं कि अव्यक्त पदार्थ इन्द्रियगोचर नहीं हैं और सायंस उनका वर्णन नहीं करती।

इस सब का अभिप्राय यह है कि जहाँ वेद में ऊपर की श्रृंखला में आरम्भ अर्थात् परमात्मा से लेकर तन्मात्र-समूह तक के सब पदार्थों का वर्णन है, सायंस उनका वर्णन नहीं करती। सायंस केवल पंचमहाभूत तथा चराचर पदार्थों का वर्णन करती है।

यहाँ इतना और स्मरण रखना चाहिए कि इस श्रृंखला में क्रम पाँच तथा छः अर्थात् अहंकार और तन्मात्र समूह का कुछ वर्णन वर्तमान सायंस भी करता है। सायंस इनके स्रोत को और इनके बनने के ढंग को नहीं जानता। परन्तु इनके गुण, कर्म तथा स्वभाव का आंशिक वर्णन करता है।

वेद में श्रृंखला के आठों अंगों का वर्णन संक्षेप रूप में है। उनके स्रोतों का भी वर्णन है और उनके बनने का भी वर्णन है। वर्तमान सायंस ने अपने विषयों का, व्याख्या से, ज्ञान प्राप्त किया है। परन्तु वेद में पूर्ण श्रृंखला के पदार्थों का वर्णन संक्षेप में ही है।

ऊपर लिखी श्रृंखला में 'अहंकारों' की गणना पदार्थों में की है। अहंकार तीन हैं। इनके नाम हैं—तैजस् अहंकार, वैकारिक अहंकार और भूतादि अहंकार। वर्तमान सायंस इनको इलेक्ट्रोन (electron), प्रोटोन (proton) और

न्यूट्रोन (neutron) कहती है। सायंस की जानकारी की यही सीमा है। इनका ज्ञान भी इस कारण होता है क्योंकि इनमें गति उत्पन्न हो जाती है। इनके पूर्व के पदार्थ हैं महत् तथा मूल प्रकृति। इनमें गति नहीं होती। गति से ही रूप बनता है। वैशेषिक दर्शन में यह कहा है कि जब अव्यक्त पदार्थों में वायु का समावेश होता है तो उनमें रूप बन जाता है। क्योंकि महत् और मूल प्रकृति में वायु का समावेश नहीं होता, इस कारण मूल प्रकृति और महत् रूपवान् नहीं होते अर्थात् वे दिखाई नहीं देते। ऊपर की श्रृंखला में अहंकार ही सर्वप्रथम वायु से प्रभावित हो गतिशील होते हैं। इस कारण ये रूपवान् हो जाते हैं और दिखाई देने लगते हैं। बस, यहाँ से ही वर्तमान विज्ञान का आरम्भ होता है।

II दूसरी बात जो मैं इस सामान्य कथन में बताना चाहता हूँ, वह यह है कि 'अविशेष' पदार्थों का ज्ञान भी पूर्ण रूप से तब तक प्राप्त नहीं होता जब तक अनुमान-प्रमाण का आश्रय न लें। दूरी के विचार से अथवा सूक्ष्मता के विचार से प्रकृति के अनेक परिणाम हैं जिनके गुणों को इन्द्रियाँ, यंत्रों की सहायता से भी अनुभव नहीं कर सकतीं और उन का ज्ञान अनुमान से ही लगाना पड़ता है।

उदाहरण के रूप में अनेक तारागणों के प्रकाश का विश्लेषण करते हुए जब उसके 'स्पेक्ट्रम' में कुछ रेखाएँ देखी जाती हैं तो उनमें विशेष प्रकार की धातुओं के होने का अनुमान लगाया जाता है। शनि, बृहस्पति, मंगल

इत्यादि ग्रहों के प्रकाश के इस प्रकार के विश्लेषण से यह अनुमान लगाया गया है कि उनमें लोहा, क्रोमियम इत्यादि पदार्थ हैं।

कई हिरण्यगर्भों (nebulae) के प्रकाश का विश्लेषण करने पर उनमें कुछ रेखाएँ देखी गयी हैं जिनसे अनुमान लगाया गया है कि वे हमारी आकाश गंगा से दूर जा रहे हैं अथवा समीप आ रहे हैं। हिरण्यगर्भ अथवा ग्रह में कुछ नहीं देखा जाता, उनके प्रकाश का ही विश्लेषण किया जाता है और उस प्रकाश में दिखाई देने वाली रेखाओं से अनुमान लगाया जाता है कि ग्रह में कौन-कौन से पदार्थ हैं तथा हिरण्यगर्भ दूर जा रहा है अथवा समीप आ रहा है।

इसी को तो अनुमान-प्रमाण कहते हैं। अनुमान-प्रमाण से धुआँ देख कर अग्नि का ज्ञान होता है। इसी प्रकार प्रकाश के विश्लेषण से प्रकाश उत्पन्न करने वाले पदार्थों के गुणों का अध्ययन सायंस कर रही है।

जब 'अविशेषों' अर्थात् व्यक्त वस्तुओं के अध्ययन में भी अनुमान-प्रमाण की आवश्यकता पड़ती है तो फिर अव्यक्त पदार्थों के विषय में अनुमान-प्रमाण की सहायता लेने में आपत्ति नहीं होनी चाहिये। मेरा यह निश्चित मत है कि भारतीय शास्त्र और वेद जब किसी अव्यक्त पदार्थ के ज्ञान प्राप्त करने में अनुमान-प्रमाण की सहायता लेते हैं तो किसी प्रकार का भी अवैज्ञानिक कार्य नहीं करते।

III तीसरी बात जिसकी ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ, वह है वर्तमान विज्ञान के नामों के विषय में। वर्तमान भाषा में हम देखते हैं कि वस्तुओं

के वैज्ञानिक नामों का, उनके गुण, कर्म तथा स्वभाव से सम्बन्ध नहीं है। कुछ नाम हैं जो लैटिन और ग्रीक भाषा से लिये गये हैं। उनका वस्तु के गुण, कर्म तथा स्वभाव से कुछ सम्बन्ध दिखाई देता है, परन्तु प्रायः नाम उन वस्तुओं के आविष्कारों के नाम पर रखे जा रहे हैं।

वैदिक भाषा में, नाम का कर्म से सम्बन्ध अनिवार्य रूप में रहता है। इस कारण वस्तुओं के नाम उनके गुण, कर्म तथा स्वभाव से सम्बन्धित होते हैं।

इसमें एक विषमता भी है। वह यह कि कभी-कभी एक नाम से अनेक पदार्थों का संकेत मिलता है। परन्तु जब वस्तु का कर्म, गुण तथा स्वभाव का निरीक्षण किया जाता है तो फिर यह विडम्बना नहीं रहती। अर्थात् वह शब्द जहाँ प्रयोग किया जायेगा, उसमें जो अर्थ उचित रहेंगें, उस पदार्थ का वही नाम होगा।

निरुक्त (१३-१२) में यह बात स्पष्ट कर दी गयी है कि वेदार्थों की चिन्ता का निवारण तीन बातों से किया जाता है। एक तो पूर्वापर सम्बन्ध से। अभिप्राय यह है कि मंत्रार्थ करते हुए शब्दों के अर्थ मंत्र के देवता से सम्बन्धित हों। इसका यह भी अर्थ है कि मंत्रार्थ करते समय पूर्व तथा बाद के मंत्रों के अर्थों का भी ध्यान रखना चाहिये।

दूसरी बात, जिससे किसी शब्द के अर्थ का निर्णय किया जाता है, यह है कि किसी भी शब्द का ऐसा अर्थ नहीं हो सकता जिस अर्थ से मंत्र का अभिप्राय वेद में किसी अन्य स्थल पर कही किसी बात का विरोध हो।

तीसरी बात है तर्क । अर्थात् शब्दार्थ करते हुए युक्ति से अर्थ करने चाहियें । तर्क के विषय में ब्रह्मसूत्रों में एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है । वह यह कि प्रत्यक्ष पर आधारित तर्क ही सार्थक होता है । वहाँ कहा है कि तर्क यदि (प्रत्यक्ष पर) आधारित न हो तो अनुमान-प्रमाण से कही बात भी असिद्ध हो जायेगी । सूत्र इस प्रकार है—

तर्काप्रतिष्ठानादप्यन्यथानुमेयमिति चेदेवमप्यनिर्मोक्ष-प्रसङ्गः ॥

(ब्र० सू० २-१-११ ॥)

IV चौथी बात, जिसके विषय में मूल लेख पढ़ने से पहले मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ, वह है महर्षि दयानन्द द्वारा किया शब्द 'ऋक्' का अर्थ । यह अर्थ उन्होंने ऋग्वेद के अपने भाष्य को आरम्भ करते हुए लिखा है । ऋक् स्तुति को कहते हैं । स्तुति का अर्थ है वस्तु के गुण, कर्म तथा स्वभाव का ज्ञान प्राप्त करना । अतः ऋक्-वेद का अभिप्राय है कि पृथिवी से लेकर परमात्मा पर्यन्त सब पदार्थों की स्तुति अर्थात् गुण, कर्म एवं स्वभाव का वर्णन ।

परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि सुई से लेकर हवाई जहाज पर्यन्त सबका वर्णन वेद में मिलेगा । केवल पृथिवी से लेकर परमात्मा तक का वर्णन ही वेद में है ।

अभिप्राय यह है कि ईश्वरकृत पदार्थों का वर्णन ऋग्वेद में है । मनुष्यकृत पदार्थों का वर्णन उसमें नहीं है । जैसे वेद में मनुष्य-इतिहास नहीं हो सकता, वैसे ही मनुष्यकृत पदार्थों का वर्णन भी नहीं हो सकता ।

वे सब वस्तुएं, मनुष्य ने प्राकृतिक नियमों का आश्रय लेकर निर्माण की हैं। और उन प्राकृतिक नियमों का वर्णन तो वेद में है। जैसे मनुष्य के कर्मों में मूल कारण प्राण है। प्राण का वर्णन वेद में है, परन्तु उस प्राण से किये गये अच्छे-बुरे कर्मों का वर्णन नहीं है। इसी प्रकार ऋत् का वर्णन वेद में है, परन्तु ऋत् के प्रयोग से मनुष्य ने क्या-क्या कर्म अथवा निर्माण सम्पन्न किया है, उसका वर्णन वहाँ नहीं है।

वेद में उन सब प्राकृतिक घटनाओं का वर्णन है जो प्राकृतिक नियमानुसार ईश्वरीय कृपा से हो रही हैं। कुछ सरल चित्त व्यक्ति रेडियो, हवाई जहाज अथवा स्टीम इन्जिन की बनावट का वर्णन वेदों में ढूँढ़ते हैं और फिर उनको न पाकर निराश हो जाते हैं। यह उन लोगों का सृष्टि-नियमों को न समझने के कारण है। मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है। इस कारण वह परमात्मा के दिये पदार्थों से क्या कर्म करेगा अथवा क्या नहीं करेगा, कोई नहीं जान सकता।

V वैदिक ज्ञान-विज्ञान की आधुनिक सायंस से तुलना करने के लिये यह आवश्यक है कि दोनों शास्त्रों में प्रयोग किये जा रहे पारिभाषिक शब्दों में समानता देखी जाये। इस कारण दोनों शास्त्रों के कुछ पर्यायवाचक शब्द यहाँ देने, मैं आवश्यक समझता हूँ। सब शब्दों का उल्लेख तो यहाँ सम्भव नहीं है। कुछ के विषय में ही यहाँ बताया जा रहा है।

पारिभाषिक शब्द

(१) सर्वप्रथम एक शब्द है 'पदार्थ'। सामान्य भाषा

में पदार्थ का अर्थ वस्तु होता है। प्रकृति से बनी हुई कोई वस्तु। परन्तु वैदिक भाषा में पदार्थ से अभिप्राय उन सब से है, जिनको शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है। इस कारण आत्मा, परमात्मा, ऊर्जा इत्यादि भी पदार्थ हैं। ये प्रकृति का परिणाम नहीं हैं, इस पर भी ये पदार्थ इस कारण कहे जाते हैं क्योंकि ये शब्दों में व्यक्त किये गये हैं।

(२) दूसरा शब्द है 'अणु'। अनेक स्थानों पर भाष्य-कारों ने अणु और परमाणु में भेद नहीं किया। वस्तुत: अणु परमाणु नहीं। यह परमाणुओं के समूह का नाम है।

जैसे कुछ लोग मिलकर समाज बनाते हैं। यह तब हो सकता है, जब उनमें किसी प्रकार का आकर्षण होता है। इसी प्रकार जब कुछ परमाणु मिलकर अणु बनाते हैं तो वे भी परस्पर किसी आकषर्ण के कारण ही समूह बना सकते हैं। आधुनिक विज्ञान में अणु का नाम 'मौलिक्यूल' (molecule) है और मौलिक्यूल ऐटमों (atoms) का समूह होता है। एक मौलिक्यूल में एक से अधिक ऐटम होते हैं। ये ऐटम परस्पर किसी शक्ति से इकट्ठे होते हैं। इस शक्ति का नाम रासायनिक शक्ति (chemical afinity) कहा जाता है। परन्तु जब मौलिक्यूल (अणु) बनता है तब इसमें एक अन्य शक्ति उत्पन्न होती है। यह रासायनिक शक्ति नहीं, उसके अतिरिक्त है। ऐसा माना जाता है कि अणु में मिलने वाले अंग (parts) इकट्ठे होते हैं तो इसमें यह शक्ति उत्पन्न होती है। आधुनिक विज्ञान इसे चुम्बकीय शक्ति (magnetic force) कहता है। वेद में इसका नाम 'मरुत' है। रासायनिक शक्ति त्रिगुणात्मक है। इसे वैदिक

भाषा में इन्द्र कहा है और चुम्बकीय शक्ति, जिसे वेद में मरुत कहा है, वह इससे पृथक् है ।

(३) इन्द्र शब्द का प्रयोग वेद में स्थान-स्थान पर आता है । इसकी स्पष्ट परिभाषा शतपथ ब्राह्मण में मिलती है । शतपथ ब्राह्मण में कहा है :—

असद्वाऽइदमग्रऽआसीत् । तदाहुः किं तदसदासीदित्यृषयो वाव तेऽग्रेऽसदासीत्तदाहुः के तऽऋषय इति प्राणा वाऽऋषयस्ते यत्पुरास्मात्सर्वस्मादिदमिच्छन्तः श्रमेण तपसारिषंस्तस्मादृषयः ॥

स योऽयं मध्ये प्राणः । एष ऽएवेन्द्रस्तानेष प्राणान्मध्यत ऽइन्द्रियेणैन्द्ध यदैन्द्ध तस्मादिन्ध ऽइन्धो ह वै तमिन्द्रऽइत्याचक्षते परोऽक्षं परोऽक्षकामा हि देवास्तऽइद्धाः सप्त नाना पुरुषानसृजन्त ॥ (शतपथ ब्राह्मण ६-१-१-१,२)

अर्थ है :—

पहले यह असत् [अव्यक्त प्रकृति] ही था । इस पर कहा है कि असत् क्या था ? पहले यह असत् ऋषि [परमाणु] ही थे । इस पर कहते हैं कि वे ऋषि कौन थे ? प्राण ही वे ऋषि थे, जो सबसे पहले इस सृष्टि को चाहते हुए श्रम तथा तप से [अरिषन्] खिन्न हो गये । इस कारण इनका नाम ऋषि हुआ ।

प्राण [परमाणु] के मध्य में इन्द्र है । इसी इन्द्र ने अपने इन्द्रिय अर्थात् पराक्रम से मध्य में इन प्राणों को दीप्त किया । इन्ध अर्थात् दीप्ति करने से इन्ध [दीप्ति करने वाला] नाम पड़ा । इसी दीप्ति करने वाले को इन्द्र कहते हैं । इन्द्र परोक्ष [छुपा हुआ] है । देवता परोक्ष-प्रिय होते

हैं। दीप्त हुए इन प्राणों के सात पृथक्-पृथक् भाग बन गये।

परमाणु की परिभाषा सांख्य दर्शन में भी है। वहाँ कहा है—"सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः"।

अर्थात्—परमाणु इन तीन (सत्त्व, रजस्, तमस्) की साम्यावस्था (balanced state) ही है। और ये तीन त्रिगुणात्मक शक्ति कहाती हैं। इनका समूह शतपथ ब्राह्मण के अनुसार इन्द्र है।

जब हम कहते हैं कि परमाणु की साम्यावस्था भंग होती है तो उसमें बैठा इन्द्र प्रकट होता है। अभिप्राय यह है कि त्रिगुणात्मक शक्ति [सत्त्व, रजस्, तमस्] बहिःमुख हो जाती है। पहले, साम्यावस्था में, यह अन्तःमुख थी और एक दूसरे को निःशेष कर रही थी। अब बहिःमुख होने से यह पड़ोस के परमाणुओं को प्रभावित करने लगती है।

इन्द्र का शत्रु वृत्र कहा जाता है। वृत्र का अभिप्राय ऐटम का जड़त्व (massy part) है। वह इन्द्र के प्रकट होने में बाधक होता है। इसे (inertia) कहते हैं।

(४) चौथा पारिभाषिक शब्द है अहंकार। सांख्य दर्शन में कहा है—

सत्त्वरजस् तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः। प्रकृतेर्महान् महतो अहंकारः। (१-६१)

प्रकृति और महत् में अन्तर परमाणुओं की अवस्था का है। प्रकृति में परमाणु साम्यावस्था में होते हैं अर्थात् उनमें की त्रिगुणात्मक शक्ति भीतर ही भीतर परस्पर विलीन हो रही होती है। महत् के परमाणु असाम्यावस्था में होते हैं।

परमाणुओं के भीतर की त्रिगुणात्मक शक्ति बहिःमुख हो जाती है।

प्रकृति और महत् में शक्ति की अवस्था इस प्रकार चित्रित की जा सकती है :—
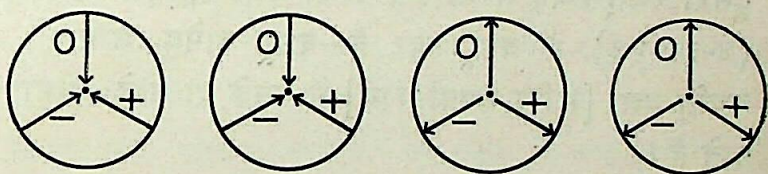
O = तमस् (neutral charge)
+ = सत्त्व (positive charge)
– = तैजस् (negative charge)

शतपथ ब्राह्मण में और वेद में भा परमाणुओं को अनेक स्थान पर ऋषि कहा है। वेद में परमाणु को 'त्रित' भी कहा है। यह इस कारण कि ये तीन गुणों का संयोग होता है। इस विषय में एक मंत्र है :—

यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत्।
(ऋ० १-१६३-२)

अर्थ हैं :—

नियंत्रणकर्त्ता परमात्मा से दी गयो शक्ति से त्रित जुप गया। पहले इस पर इन्द्र अधिष्ठित था।

यह वही बात है जो शतपथ में कही थी कि इन्द्र परमाणु की त्रिगुणात्मक शक्ति है और सृष्टि-रचना से पूर्व परमाणुओं के भीतर उस पर नियंत्रण कर रही थी।

अत: परमाणु को वेद में ऋषि भी कहा गया है और त्रित भी।

इन्द्र को त्रिगुणात्मक शक्ति कहते हैं। शक्ति के तीन गुणों में एक गुण तम् है। वह शून्य का पर्याय है। इस कारण सक्रिय इन्द्र के दो ही अंग हैं। एक सत्त्व और दूसरा रजस्। वेद में भी इन्द्र के दो अश्व कहे हैं। ऋग्वेद (४-३२-२३) में 'बभ्रू कहा है—बभ्रू यामेषु शोभेते'। अर्थात् यज्ञ [सृष्टि-रचना कार्य] में उसके दो घोड़े शोभा पाते हैं।

(५) पाँचवा शब्द है 'अप:'।

सांख्य में कहा है कि महत् से अहंकार बने। अहंकारों के लिए वैदिक भाषा में अप: शब्द का प्रयोग व्यापक रूप में मिलता है। इसके सम्बन्ध में मंत्र हैं :—

असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि॥
त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं जनित्रम्॥
(ऋ० १-१६३-३, ४)

अर्थ हैं :—

वह तेज [जिसे इससे पहले मंत्र में नियन्त्रण करने वाला कह कर सम्बोधित किया था, यहाँ यम कहा है] तू है। तू प्रकाशवान् है, तू अर्वन् है, छुपे हुए नियम से बंधा हुआ त्रित, परमात्मा से अधिष्ठित है। तेरी त्रित (परमाणु) की साम्यावस्था फट जाती है और कहते हैं—तीन दिव्य

बन्धन [परमाणुओं के समूह] गुट्ट बन जाते हैं। ये तीन दिव्य गुण वाले गुट्ट तीन अप: अन्तरिक्ष में बनते हैं। इन अप: से मेरे [परमात्मा के] पवित्र छन्द उच्चारण होते हैं और कहा जाता है कि महान् जगत् की रचना होती है।

अत: अप: शब्द अहंकारों के लिये प्रयुक्त हुआ है। अहंकार भी तीन हैं। सांख्य इनको तैजस्, वैकारिक और भूतादि कहता है। इन अहंकारों से ही पंच-महाभूत बनते हैं, जिनसे सृष्टि के सब पदार्थ निर्माण होते हैं। आधुनिक विज्ञान अप: अर्थात् अहंकारों को ऐटम के कण (atomic particles—electron, proton, neutron) कहता है।

यहाँ इतना बता देना ठीक रहेगा कि प्राय: भाष्यकार अप: शब्द का अर्थ 'जल' करते हैं। हम समझते हैं कि वेद में अप: का यह अर्थ नहीं है। अप: अहंकारों का पर्याय ही है।

(६) अहँकारों के समूह को ऐटम कहते हैं। इसे वेदान्त दर्शन में परिमण्डल कहा है। वेदान्त दर्शन का एक सूत्र है—

महद्दीर्घवद्वा ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम्॥

(वे० द०—२-२-११)

इस सूत्र का अभिप्राय यह है कि महत् में दीर्घों [बड़े-बड़े कणों] के बाहर ह्रस्व [छोटे-छोटे कण] घूमने लगते हैं।

इस संयोग को परिमण्डल इसलिये कहा है क्योंकि ये परिमण्डलीय गति से बनते हैं। ये ऐटम हैं। इसमें प्रोटोन

और न्यूट्रोन के चारों ओर इलेक्ट्रोन चक्कर काट रहे होते हैं। इसको प्रकट करने के लिये एक मंत्र इस प्रकार है :—

अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः ।।

(ऋ० १-३२-१०)

इस मंत्र का देवता [विषय] इन्द्र है।

पदच्छेद—अतिष्ठन्तीनाम्, अनि-वेशनानाम्, काष्ठानाम्, मध्ये, नि-हितम्, शरीरम्।

वृत्रस्य, निण्यम्, वि, चरन्ति, आपः दीर्घम्, तमः, आ-शयत्, इन्द्र-शत्रुः ।।

अर्थ हैं—

(काष्ठानाम् अतिष्ठन्तीनाम् अनि-वेशनानाम् मध्ये नि-हितम् शरीरम्) [यास्क २-१५ के अनुसार काष्ठा अपः हैं] चलायमान् और अस्थिर अपः के मध्य में शरीर नियुक्त है।

(वृत्रस्य निण्यम् आपः वि चरन्ति इन्द्र-शत्रुः तमः दीर्घम् आशयत्) इन्द्र के शत्रु वृत्र [भारी भाग] की गहराई और मध्य में तम् अपः सोते हैं।

इस मंत्र में काष्ठा उन अपः के लिये प्रयुक्त हुआ है जो चलायमान् और अस्थिर हैं और सीमा पर चक्कर काट रहे हैं। शब्द है 'चरन्ति' अर्थात् चल रहे हैं। दूसरे वे अपः हैं जो वृत्र के मध्य में और गहराई में सोये हुए हैं (निश्चल पड़े हैं)।

यह आधुनिक विज्ञान के ऐटम का चित्र है। सीमा पर चक्कर काट रहे अपः काष्ठा कहे गये हैं और भीतर गहराई में सोये हुए अपः तमस् कहे गये हैं। तमस् के बाहर वृत्र हैं।

ऐटम में इलेक्ट्रोन सीमा पर चक्कर लगाते हैं, प्रोटोन तथा न्यूट्रोन मध्य में बैठे हुए हैं।

ऐटम का सांकेतिक चित्र इस प्रकार है :—
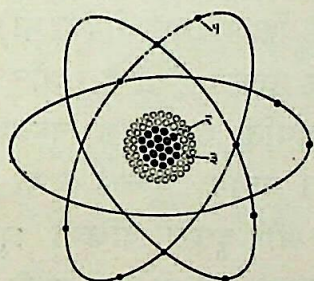
इसे ही ब्रह्मसूत्रों में परिमण्डल कहा है। आधुनिक विज्ञान इसे ऐटम (atom) कहता है। इस ऐटम में तीन प्रकार के अपः होते हैं। सांख्य इनको तैजस् अहंकार, वैकारिक अहंकार तथा भूतादि अहंकार कहता है। आधुनिक विज्ञान इनको इलेक्ट्रोन, प्रोटोन तथा न्यूट्रोन कहता है।

(७) 'मरुत' :—आधुनिक विज्ञान में चुम्बकीय शक्ति (magnetic force) ही मरुत है। जब ऐटम अर्थात् परिमण्डल संयुक्त होकर अणु बनाते हैं तो इनमें एक विशेष प्रकार की शक्ति उत्पन्न हो जाती है, जिसको चुम्बकीय शक्ति कहते हैं। वैदिक भाषा में इसे मरुत कहा है। इस

शक्ति को रखने के कारण यह अणु अर्थात् परिमण्डलों का समूह मरुत (मौलिक्यूल) कहाता है।

महत् के उपरान्त अहंकार, अहंकारों के उपरान्त परिमण्डल और अब परिमण्डलों से मौलिक्यूल, जिसे मरुत कहा है, का ही अभी तक मैंने वर्णन किया है। यह चुम्बकीय शक्ति न तो महत् में होती है, न ही अहंकारों में और न ही परिमण्डलों (atoms) में। परन्तु जब परिमण्डल-समूह बनते हैं तो यह उनमें उत्पन्न हो जाती है। आधुनिक विज्ञान यह मानता है कि परिमण्डलों (ऐटमों) की आपेक्षिक गतियों से यह शक्ति उत्पन्न होती है। और इस शक्ति से प्रत्येक मौलिक्यूल अर्थात् मरुत एक चुम्बक के रूप में कार्य करने लगता है। प्रत्येक चुम्बक के दो ध्रुव होते हैं। एक उत्तरी ध्रुव और दूसरा दक्षिणी ध्रुव। आधुनिक विज्ञान प्रत्येक मौलिक्यूल को दो ध्रुव वाली एक इकाई मानता है। अभिप्राय यह है कि मौलिक्यूल अथवा मरुत में चुम्बकीय शक्ति होती है ओर इसके ध्रुव होते हैं। लोहा और कुछ अन्य धातुओं में चुम्बकीय शक्ति प्रकट होती है तथा कई धातुओं अथवा पदार्थों में इस शक्ति का प्राकट्य नहीं होता। इसमें कारण वैज्ञानिक बताते हैं। विषयान्तर होने से यहाँ नहीं दिया जा रहा।

मरुतों में भी इस शक्ति का होना माना गया है और उनमें ध्रुवों की उपस्थिति भी मानी है। जैमिनीय ब्राह्मण में कहा है—

ततो मरुतोऽसजृत—ईशानमुखान्।

(जै० ब्रा० ३-३८१)

अर्थात्—तब मरुत बनाये गये तो उनका मुख ईशान दिशा की ओर था।

ईशान का अर्थ उत्तर-पूर्व कोण की दिशा है।

इससे यह स्पष्ट है कि मरुत उत्तर-पूर्व कोण की ओर देखते हैं अर्थात् उनका एक कोण उस ओर रहता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पृथिवी में लौह-समूह भी एक बड़ा चुम्बक है और उसका मुख [उत्तरी सिरा] पृथिवी के उत्तरी ध्रुव से पूर्व की ओर झुका हुआ है। अभिप्राय यह कि पृथिवी का चुम्बक भी ईशान कोण की ओर मुख किये हुए है। इसी प्रकार सब मौलिक्यूल हैं। इसी से स्पष्ट है कि मौलिक्यूल मरुत ही हैं।

मरुत एक शक्ति है जो परिमण्डल-समूहों में उपस्थित होती है।

मरुत शक्ति इन्द्र नहीं है। वैसे इन्द्र अर्थात् त्रिगुणात्मक शक्ति भी अणुओं (मरुतों) में होती है, परन्तु मरुत शक्ति त्रिगुणात्मक शक्ति से पृथक् है।

इस विषय में वेद मंत्र है :—

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा।
मन्दू समानवर्चसा॥

(ऋ० १-६-७)

पदच्छेद—इन्द्रेण, सम्, हि, दृक्षसे, सम्-जग्मानः, अबिभ्युषा। मन्दू, समान-वर्चसा॥

इस मन्त्र का देवता 'मरुत इन्द्रश्च' है। अर्थात् इस मंत्र में इन्द्र और मरुत की तुलना की गयी है।

मन्त्रार्थ—(इन्द्रेण सम् हि दृक्षसे सम्-जग्मानः, अबि-भ्युषा) [मरुत] भय रहित हो [इन्द्र के] साथ जाता हुआ इन्द्र ही दिखाई देता है।

(मन्दू समान-वर्चसा) प्रसन्नता और वर्चस् [बल] में दोनों समान हैं।

इस मंत्र का अभिप्राय यह है कि मरुत और इन्द्र की शक्ति समान है और ये मरुत में साथ-साथ रहते हैं। परन्तु ये एक नहीं हैं, दो हैं।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के सूक्त ८५, ८६, ८७, ८८ मरुतों के विषय में हैं। मैं इनमें से दो-तीन मंत्र मरुतों के गुण, कर्म, स्वभाव को स्पष्ट करने के लिये दे रहा हूँ। उनमें से एक मंत्र है—

प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामन्रुद्रस्य सूनवः सुदंससः।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः॥
(ऋ० १-८५-१)

पदच्छेद—प्र, ये, शुम्भन्ते, जनयः, न, सप्तयः यामन्, रुद्रस्य, सूनवः, सु-दंससः। रोदसी, हि, मरुतः, चक्रिरे, वृधे, मदन्ति, वीराः, विदथेषु, घृष्वयः॥

मंत्र का देवता मरुत है।

मन्त्रार्थ—(ये यामन् जनयः न प्र शुम्भन्ते) जो मार्ग पर चलती हुई स्त्रियों की भाँति शोभा पाते हैं। [जब पदार्थ वायवी—gaseous अवस्था में होते हैं तो उसके

मौलिक्यूल अर्थात् मरुत ऐसे ही स्वतंत्र रूप में विचरते हैं जैसे मार्ग पर चलती हुई स्त्रियाँ ।]

(रुद्रस्य सप्तयः सूनवः सु-दंससः) रुद्र [इन्द्र] के वेग-गामी पुत्र शुभ कर्म करते हैं। [मरुतों को इन्द्र का पुत्र कहा है। ये मौलिक्यूल हैं और रासायनिक शक्ति से संयुक्त होकर परिमण्डल इनको बनाते हैं]।

(रोदसी हि मरुतः) अन्तरिक्ष और पृथिवी पर मरुत ही हैं। [मरुतों के बनने का स्थान अन्तरिक्ष माना है। आधुनिक विज्ञान में हल्की हवाओं के मौलिक्यूल अन्तरिक्ष में बनते हुए माने जाते हैं। हाईड्रोजन से नाईट्रोजन, नाईट्रोजन से कार्बन (C_{14}) रेडियो-ऐक्टिव और इससे कार्बन सामान्य (C_{12})। ये आगे चल कर अन्य पदार्थ बनाते हैं।

(चक्रिरे वृधे वीराः मदन्ति घृष्वयः विदथेषु) चक्राकार गति में बढ़ने के लिये वीर [मरुत] प्रसन्न होता है और कार्य [यज्ञ] में लीन होने के योग्य [अपने को] बनाता है।

इस मंत्र का अभिप्राय यह है कि मरुत अन्तरिक्ष में बनते हैं और वहाँ से पृथिवी पर आते हैं। पृथिवी पर आकर नाना प्रकार के परिमण्डल तदनन्तर मरुत बनाते हैं। पृथिवी पर ये मरुत नाना प्रकार के कार्य सरलता से करते रहते हैं। यज्ञ का अभिप्राय सृष्टि-रचना कार्य है अर्थात् ये मरुत सृष्टि-रचना के कार्य को स्वतंत्रता से करते हैं।

इसी सूक्त का अगला मंत्र है :—

त उक्षितासो महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः।
अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः॥

(ऋ० १-८५-२)

पदच्छेद—त, उक्षितासः, महिमानम्, आशत, दिवि, रुद्रासः, अधि, चक्रिरे, सदः ।

अर्चन्तः, अर्कम्, जनयन्तः, इन्द्रियम्, अधि, श्रियः, दधिरे, पृश्नि-मातर :।।

मंत्र का देवता 'मरुत' है ।

मन्त्रार्थ—(ते) वे [ऊपर कहे अर्थात् मरुत];

(महिमानम् उक्षितासः आशत) महिमायुक्त अभिषिक्त होने पर [शक्ति पर अधिकार पा जाने पर] विस्तार पा जाते हैं ।

(दिवि रुद्रासः अधि चक्रिरे सदः) अन्तरिक्ष में रुद्र के पुत्र [मरुत] अपने स्थान पर स्थिर रहते हुए क्रिया शील हो गये ।

(अर्कम् अर्चन्तः जनयन्तः इन्द्रियम् अधि श्रियः पृश्नि-मातरः दधिरे) प्रशंसा योग्य की प्रशंसा करते हुए इन्द्रियों में श्रेष्ठ शक्ति उत्पन्न करते हुए, आदित्य है माता जिनकी, उनको धारण किया ।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि मरुत जब शक्ति सम्पन्न हो जाते हैं तो फिर ये फैलते हैं । ये शक्ति सम्पन्न होते हैं अन्तरिक्ष में । और फैलने का अभिप्राय है पृथिवी पर आकर ये विस्तार पाते हैं [अन्य अनेक मरुत बनाते हैं] । और फिर इन्द्रियों की श्रेष्ठ शक्ति उत्पन्न करते हैं । अर्थात् मनुष्यों में शक्ति पैदा करते हैं । यह हम ऊपर बता चुके हैं कि मौलिक्यूल्ज़ [मरुत] अन्तरिक्ष में बनते हैं । हाईड्रोजन से नाइट्रोजन, नाइट्रोजन से कार्बन का पहले

वर्णन किया जा चुका है । ये मरुत पृथिवी पर आते हैं तो इनसे और बड़े-बड़े मरुत बनते हैं । बड़े-बड़े मरुतों में अन्न के मरुत, चीनी के मरुत इत्यादि भी हैं । इन से प्राणी में शक्ति आती है ।

इसी विषय पर एक मंत्र और है :—

आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कैं रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिर-श्वपर्णैः ।
आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः ।।

(ऋ० १-८८-१)

पदच्छेद—आ, विद्युन्मत्-भिः, मरुतः, सु-अर्कैः, रथेभिः, यात, ऋष्टिमत्-भिः, अश्व-पर्णैः ।

आ, वर्षिष्ठया, न, इषा, वयः न, पप्तता, सु-मायाः ।।

मंत्र का देवता मरुत है ।

मन्त्रार्थ—(विद्युन्मत्-भिः रथेभिः ऋष्टिमत्-भिः मरुतः आ सु-अर्कैः अश्व-पर्णैः)

विद्युत शक्ति से युक्त रथों [शरीरों] के द्वारा कार्य करने की शक्ति के द्वारा मरुत अपने शोभा-युक्त रचना कार्य में वेग से लग जाता है ।

अश्व का अर्थ है रचना कार्य करने में योग्यता रखने वाला । पर्णै का अर्थ है तीव्र गति से कार्य करने वाला ।

(वर्षिष्ठया नः इषा वयः न सु-मायाः आ पप्तत) हे श्रेष्ठ कर्म करने वालो ! हमारे लिये प्रचुर मात्रा में अन्न आदि के लिये, पंछी की भाँति चारों ओर से उड़ कर आओ ।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि मरुत जब पृथिवी पर आ जाते हैं तो ये अन्न इत्यादि बनायें और भोग की अन्य सामग्री तैयार करें, जिससे प्राणियों को सुख मिले। ऊपर के मंत्र में कहा था कि वे वेग से आते हैं और यहाँ कहा है कि जैसे पंछी उड़ते हुए आते हैं, वैसे आकर अन्न-अनाज उत्पन्न करें। ये मरुत सूर्य किरणों के साथ पृथिवी पर आते हैं और भोग के योग्य पदार्थ बनाते हैं।

पंच महाभूत

आधुनिक विज्ञान बताता है कि अणु (molecules) संयुक्त हो कर पाँच भूत अर्थात् ठोस पदार्थ, जलीय पदार्थ, वायवी पदार्थ, अग्नेय पदार्थ और आकाशीय पदार्थ बनाते हैं। ये पदार्थ अणुओं के इकट्ठे होकर विशेष परिस्थिति में व्यवहार करने से बनते हैं।

यह ऊपर कहा है कि मरुत एक स्थान पर स्थिर होकर क्रिया करते हैं। वहाँ क्रिया के लिये शब्द 'चक्रिरे' आया है। जब गति एक स्थान पर स्थिर हो तो वह गति सदा काँपने (oscilation) की होती है। ऐसी ही गति मरुतों की है। मरुत एक स्थान पर स्थिर होकर 'चक्रिरे' गति करते हैं। अर्थात् एक केन्द्र पर विकम्पित होते हैं। अभिप्राय यह है कि केन्द्र के इधर-उधर काँपते हैं। काँपने की सीमा को आयाम (amplitude) कहते हैं। जब मरुतों का कम्पन कम हो और आयाम छोटे-छोटे हों और मरुत समीप के अणुओं के आकर्षण (gravity) से बंधे हुए हों, तब ठोस पदार्थ बनते हैं।

जब कम्पन इतना बड़ा हो कि समीप के अणुओं का आकर्षण अणुओं को बांध कर न रख सके, तब पदार्थ जलीय (liquids) अवस्था में होते हैं।

और जब आयाम इतना बड़ा हो जाये कि पड़ोस के अणुओं का आकर्षण किंचित् मात्र भी प्रभाव न रखे तो अणु स्वतंत्रता से विचरने लगते हैं और पदार्थ की अवस्था वायवी हो जाती है। वायु को यदि किसी बर्तन अथवा स्थान में बंद कर न रखा जाये तो यह, जहाँ तक इसको स्थान मिलता है, फैल जाती है।

ऊपर के मंत्रों में वायवी अवस्था की तुलना मार्ग पर चलती हुई स्त्रियों से की है। यह वायवी अवस्था का वर्णन है। अन्य मंत्रों में कहा है कि एक स्थान पर स्थिर होकर गति करते हैं। वह जलीय और पार्थिव अवस्थाओं का वर्णन है।

अग्नेय और आकाशीय मरुतों की अवस्था उनके विकम्पन से सम्बन्ध नहीं रखती।

यह बताया जा चुका है कि मरुत चुम्बकीय शक्ति से प्रभावित होते हैं और इनका मुख (उत्तरी ध्रुव) ईषान् कोण की तरफ रहता है। पृथिवी के चुम्बक की भी यही दिशा है।

यहाँ इतना और बता देना उचित है कि आधुनिक विज्ञान में आकाश नाम की वस्तु का कोई अस्तित्व नहीं माना जाता। इसमें कारण यह है कि जहाँ वे अन्य मरुतों को देख सकते हैं, वहाँ आकाशीय मरुतों को नहीं देख सकते।

आकाशीय मरुत गतिशील नहीं होते और गति से ही रूप बनता है। इस कारण आकाशीय मरुत रूपवान् नहीं होते।

आकाश के विषय में एक बात और समझनी चाहिये। ब्रह्मसूत्रों में दो प्रकार के आकाश माने हैं। एक पंचभौतिक आकाश है। इसमें मरुत होते हैं। और दूसरा आकाश है व्योम। इसे अंग्रेजी में स्पेस (space) कहते हैं।

वेद और सायंस

अभी तक मैंने आधुनिक विज्ञान के कुछ पारिभाषिक शब्दों के पर्याय वैदिक भाषा में बताये हैं। अब सायंस और वेद के विषय में कहना चाहता हूँ। यह तो सर्वविदित है कि वेद के छः अंग हैं और छः उपांग हैं। अंग और उपांगों में अन्तर है। अंग वेद के ऐसे ही भाग हैं जैसे हाथ-पाँव इत्यादि शरीर का भाग होते हैं। वस्तुतः वे वेद ही हैं। उपांग अंगों के समीप होने से उनकी रक्षा का यत्न करने वाले कहे जाते हैं।

वेद के अंग हैं—छंद, व्याकरण, निरुक्त, शिक्षा, कल्प तथा ज्योतिष।

इन अंगों में छन्द, व्याकरण तथा निरुक्त तो वेदार्थ समझने के ढंग हैं। ये वेद विषय का दर्शन तो कराते हैं, परन्तु स्वयं वेद का विषय नहीं हैं। वेद के विषय को स्पष्ट करने में इनका सहयोग होने से ये वेद का अंग माने गये हैं।

अन्य तीन अंग अर्थात् शिक्षा, कल्प और ज्योतिष से ही पूर्ण वेद के विषय का ज्ञान होता है। सायंस का सम्बन्ध

कल्प के साथ है। इसलिये कल्प क्या है, यह समझना चाहिये।

सृष्टि-रचना के आरम्भ से प्रलय पर्यन्त जितने भी प्रकृति के परिवर्तन होते हैं, उनका वृत्तान्त ही कल्प है।

यह मैंने ऊपर बताया है कि प्रकृति में होने वाले प्राकृतिक परिवर्तनों का वर्णन ही वेद में है। मानवकृत पदार्थों का वर्णन वेद में नहीं है। न तो मानव-इतिहास वेद में है न हो मानवकृत वस्तुओं का वृत्तान्त वेद में है। मानव अपने कर्म में स्वतंत्र होने से वह किस प्रकार प्राकृतिक शक्तियों का उपयोग करेगा, वर्णन नहीं किया जा सकता। हाँ, उन प्राकृतिक शक्तियों और उन प्राकृतिक नियमों का वर्णन तो वेद में है, जिनसे मनुष्य अपने कार्य की सिद्धि करता है।

सृष्टि-रचना, चलन और प्रलय की विद्या को आधुनिक विज्ञान में कौस्मोगोनी (cosmogony) कहते हैं। आधुनिक विज्ञान इस विषय में जो कुछ कहता है, उसका अति संक्षिप्त वर्णन देना हो यहाँ सम्भव है। कौस्मोगोनी का अर्थ है अन्तरिक्ष को विद्या और अन्तरिक्ष में विद्यमान पदार्थों का ज्ञान। आधुनिक विज्ञान यह मानता है कि अन्तरिक्ष में दो प्रकार के पदार्थ पाये जाते हैं। एक है कौस्मिक किरणें (cosmic rays) और दूसरा है कौस्मिक डस्ट (cosmic dust)।

यह माना जाता है कि किरणें तोन प्रकार की हैं। ऐल्फा (α), बीटा (β) तथा गामा (γ)।

कौस्मिक डस्ट (cosmic dust) अन्तरिक्ष में कण हैं। ये बहुत छोटे-छोटे भार-रहित और विद्युत आवेश लिये हुए होते हैं। इनके आवेश को क्वाण्टम (quantam) कहते हैं। आधुनिक विज्ञान संसार के सब पदार्थ इनसे ही बने हुए मानता है। परन्तु वेदमत के अनुसार ये अन्तरिक्ष की किरणें और अन्तरिक्ष के कण प्रारम्भिक पदार्थ नहीं हैं। वेद में कौस्मिक डस्ट को 'रजः' कहा है और कौस्मिक किरणों को तेज की रश्मियाँ कहा है। वेद मतानुसार ये दोनों सृष्टि-रचना के समय बने।

पहले गामा किरण (γ rays) उत्पन्न हुई। वेद में इसको तेज कहा है। इसको 'अर्वः' भी कहते हैं। इनका व्यापक नाम अश्व है।

सांख्य मतानुसार कुछ भी वस्तु नई उत्पन्न नहीं होती। मूल पदार्थ के परिवर्तन का नाम ही उत्पत्ति है। इस कारण 'अर्वः' अर्थात् तेज की उत्पत्ति का अभिप्राय है परमात्मा की अप्रत्यक्ष शक्ति का प्रकट होना।

परमात्मा की शक्ति अर्थात् 'अर्वः' प्रकृति के परमाणुओं पर प्रभाव डालती है तो फिर उससे आवेश युक्त कण (electrified particles) बन जाते हैं। ये ही कौस्मिक डस्ट है।

मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि वर्तमान विज्ञान परमात्मा और मूल प्रकृति के विषय में कुछ न जानता हुआ सृष्टि आरम्भ कौस्मिक डस्ट और कौस्मिक किरणों से मानता है। और इन कौस्मिक डस्ट तथा कौस्मिक

किरणों की उत्पत्ति शून्य से मानता है। इस विषय में ऐन्साईक्लोपीडिया ब्रिटैनिका का निम्न वाक्य विचारणीय है—

In 1948 an entirely new and revolutionary theory was proposed in Cambridge, England by H. Bondi, T. Gold and F. Hoyle, which..............................assumes that progressive dispersal of galaxies does not lead to rarefaction of the space of the universe, because their place is taken by younger galaxies (—) which condence from new matter that is being continuously created (from nothing) all through the inter-galactic space.

Enc. Brilt. (Ed,) 1968-6 579 (a)

इसका अभिप्राय है—सन् १९४८ में कैम्ब्रिज के वैज्ञानिकों ने यह मत उपस्थित किया था कि जो कुछ पहले पता किया जा चुका है, वह सर्वथा सत्य नहीं। आकाश-गंगाएँ फैल नहीं रहीं। न ही नई आकाश गंगाओं के बनने से स्थान खाली हो रहा है, क्योंकि उस स्थान पर प्रकृति से (शून्य से) नई गंगाएँ बन रही हैं।

बस, वर्तमान विज्ञान यहाँ तक हो पहुँचा है। वेद मानता है कि न तो प्रकृति संकुचित हो रही है और न ही कोई स्थान खाली हो रहा है। प्रकृति की साम्यावस्था भंग हो रही है, जिससे प्रकृति के रूप बदल रहे हैं।

इस समय संसार भर के सभी देश करोड़ों अरबों रुपये इस मूल विज्ञान (fundamental science) की जानकारी के लिये व्यय कर रहे हैं। इस पर भी वैज्ञानिक तत्त्व की बात तक नहीं पहुँच सके।

आधुनिक विज्ञान कौस्मिक डस्ट और कौस्मिक किरणों से सृष्टि का आरम्भ मानता है। इनसे परिमण्डलीय कण (atomic particles) बनते हैं और उनसे संसार के अनेकानेक पदार्थ बनते हैं।

वैज्ञानिकों का मत है कि पूर्व काल में अन्तरिक्ष-विद्या में दिखाई देने वाला नक्षत्र-मण्डल ही जाँच का विषय था। यह पूर्ण सत्य नहीं है। पूर्ण सत्य यह है कि वेद-ज्ञान परमात्मा से आरम्भ होता है। परमात्मा के तेज से प्रकृति में परिणाम उत्पन्न होते हैं जिनसे पहले महत्, फिर अहंकार, अहंकारों के उपरान्त परिमण्डल, परिमण्डलों के उपरान्त महाभूत और तदनन्तर संसार के अनेकानेक पदार्थ बनते हैं।

सृष्टि-रचना से पहले क्या था? उसमें से कैसे यह सृष्टि बनी, इसका स्पष्ट वर्णन वेद में है। वेद मंत्र हैं—

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास॥

(ऋ० १०-१२९-१,२)

पदच्छेद—न, असत्, आसीत् नो, सत्, आसीत्, तदानीम्, न, आसीत्, रजः, नो, व्योमा, परः, यत्।

किम्, आ-अवरीवः कुह, कस्य, शर्मन्, अम्भः, किम्, आसीत्, गहनम्, गभीरम् ॥१॥

न, मृत्युः, आसोत्, अमृतम्, न, तर्हि, न, रात्र्याः, अह्न, आसीत्, प्र-केतः ।

आनीत्, अवातम्, स्वधया, तत्, एकम्, तस्मात्, ह, अन्यत्, न, परः, किम् च न आस ॥२॥

इन मंत्रों का देवता है 'भाव वृतम्' । अर्थात् जो रचना के पहले था, उसका वृत्तान्त ।

मन्त्रार्थ—(सृष्टि रचना से पहले) न सत् [व्यक्त जगत्] था न असत् [अव्यक्त जगत्] था । रजः (cosmic dust) भी नहीं थी । न ही व्योम (defined space) था । किससे यह घिरा हुआ था और किस पर यह टिका हुआ था ? [अर्थात् किसी पर नहीं] । यह गहरा गम्भीर [अर्थात् असीम] क्या था ?

उस समय न मृत्यु थी, न जीवन था । न रात्रि थी, न दिन अनुभव होता था । प्राण [परमात्मा का तेज] था, परन्तु (अवातम्) निश्चल था । एक स्वधा [अपने में ही स्थित] थी । इनके अतिरिक्त और कुछ नहीं था ।

इन मंत्रों में कुछ एक बातें समझने की हैं और आधुनिक विज्ञान के शब्दों में जानने की हैं ।

(१) 'रजः' शब्द कौस्मिक डस्ट का पर्याय है ।

(२) 'आनीत' का अर्थ है प्राण, तेज । इसे अवातम् कहा है अर्थात् यह गतिरहित था ।

(३) सत् और असत् शब्द जब और जहाँ भी ये इकट्ठे प्रयोग में आते हैं तो प्रकृति के दो रूपों को प्रकट करते हैं। एक प्रकृति का मूल रूप है। यह असत् है अर्थात् अव्यक्त है और दूसरा कार्य-जगत् का रूप है। यह सत् है। भगवद् गीता में भी प्रकृति को सत् और असत् कहा है।

'सदसद्योनिजन्सु' (भ० गीता १३-२१)

अर्थात्—'जो सत् और असत् प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं।'

ऊपर मंत्रों में कहा है कि शक्ति सुषुप्ति अवस्था में थी। इनको अवांतम् कहा है। अंग्रेज़ी में इसको (latent) कहते हैं।

स्वधा का अर्थ है, वह पदार्थ जो अपने आप में स्थित हो। यह प्रकृति है। प्रकृति के परमाणु जब साम्यावस्था में होते हैं तो वे अपने आप में स्थित होते हैं। इनका बाहर के किसी पदार्थ से सम्बन्ध नहीं होता। इस 'स्वधा' के विषय में इसी सूक्त के अगले मंत्र में कहा है :—

तम आसीत्तमसा गूढ़हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ॥

(ऋ० १०-१२९-३)

पदच्छेद—तमः, आसीत्, तमसा, गूढ़हम्, अग्रे, अप्रकेतम्, सलिलम्, सर्वम्, आः, इदम्।

इस मंत्र का देवता भी 'भाव वृत्तम्' है।

मन्त्रार्थ—अन्धकार युक्त थी। उस अन्धकार से गूढ़ [गहराई में] न दिखाई देने वाला एक सलिल सब स्थान पर था।

यह प्रकृति का मूल रूप बताया है। प्रकृति तमोभूत थी। इसे सांख्यदर्शन ने प्रकृति की साम्यावस्था कहा है। प्रत्येक परमाणु के भीतर की तीन शक्तियाँ परस्पर सन्तुलित अवस्था (balanced state) में थीं।

सांख्यदर्शन में कहा है—

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः।

(सां० दर्शन १-६१)

सलिल के विषय में सायण कहता है—'सलिलम् पल जाता औणादिक इलच'।

इसका अभिप्राय है कि परमाणुओं के साथ-साथ गति के होने से जो अवस्था उत्पन्न होती है, वह सलिल है।

इसको समझने के लिये रेत के कणों की राशि का चिन्तन करिये। रेत के कण परस्पर गति करने के लिए स्वतंत्र होते हैं। इस कारण उनकी अवस्था को सलिल कहेंगे।

सामान्य भाषा में सलिल का अर्थ जल लिया जाता है। जल के अणु भी एक दूसरे से वैसे जुड़े नहीं होते जैसे रेत के कण जुड़े नहीं होते और गति करने में स्वतंत्र होते हैं। इसीलिये जल भी सलिल है। बह जाने वाले पदार्थों को सलिल कहते हैं।

साथ ही कहा है कि यह 'स्वधा' सर्वत्र उपस्थित थी।

मैंने बताया है कि आधुनिक विज्ञान मानता है कि व्योम में कुछ नहीं था और संकुचन उपस्थित हुआ। वेद ऐसा नहीं मानता। वह कहता है कि संकुचन नहीं हुआ, साम्यावस्था भंग हुई है।

पूर्व में दिये मंत्र (ऋ० १०-१२९-२) में यह भी कहा है कि प्रकृति के अतिरिक्त प्राण भी था और वह सुषुप्ति अवस्था में था। सृष्टि-रचना के आरम्भ से पहले की बात कही जा रही है। प्राण सुषुप्ति (अवातम्) अवस्था में था। इसको हमने शक्ति की प्रच्छन्न अवस्था (latent state of matter) कहा है। 'लेटैण्ट' का अर्थ है—अप्रत्यक्ष।

एक उदाहरण से समझा जा सकता है। किसी मकान की मुँडेर पर एक ईंट रखी है। क्योंकि यह पृथिवी से दूर है, इस कारण पृथिवी का आकर्षण इसको हो रहा है, परन्तु मुँडेर उस आकर्षण को कार्य करने नहीं देती। इस प्रकार पृथिवी की आकर्षण शक्ति ईंट में प्रकट नहीं हो रही।

तनिक इस ईंट को मुँण्डेर से खिसका कर आगे कर दें तो यह गिरेगी और यदि किसी के सिर पर पड़ जाये तो उसकी हत्या भी कर सकती है।

जब ईंट मुँडेर पर थी, उसमें यह हत्या करने की शक्ति थी, परन्तु प्रकट नहीं हो रही थी। जब पृथिवी के आकर्षण से उसमें गति उत्पन्न हुई तो वह शक्ति प्रत्यक्ष हो गयी।

गति ही वायु अर्थात् वात् है और अवातम् का अर्थ है बिना वायु के अर्थात् गतिरहित।

जब इसमें गति उत्पन्न होती है, तब शक्ति प्रकट होती है।

सृष्टि-रचना के समय दो पदार्थ थे। एक शक्ति (तेज)

और दूसरा प्रकृति। जब इनका समागम हुआ तो रचना आरम्भ हो गई। इस विषय में ऋग्वेद में एक सूक्त दिया है जिसमें इस आरम्भिक अवस्था से लेकर पूर्ण जगत् की निर्मित अवस्था तक वर्णन किया गया है। मैं वह सूक्त इस स्थान पर दे देना चाहता हूँ। यह सूक्त संक्षेप में कल्पारम्भ का वर्णन करता है। आप देखेंगे कि ऐसा वर्णन आधुनिक विज्ञान में नहीं है। यद्यपि इनमें से कुछ बातें व्याख्या के साथ वर्णन की गयी हैं, इस पर भी वे न तो स्पष्ट हैं न पूर्ण।

ऋग्वेद का यह सूक्त है—प्रथम मण्डल, सूक्त एक सौ त्रेसठ। इस सूक्त के तेरह मंत्र हैं। वे सब यहाँ दिये जा रहे हैं।

सूक्त का प्रथम मंत्र इस प्रकार है :—

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन्॥
(ऋ० १-१६३-१)

पदच्छेद—यत्, अक्रन्दः, प्रथमम्, जायमानः, उद्यन्, समुद्रात्, उत, वा, पुरीषात्।

श्येनस्य, पक्षा, हरिणस्य, बाहू, उपस्तुत्यम्, महि, जातम्, ते अर्वन्॥

मंत्र का देवता है 'अश्वोऽग्निः'। अर्थात् वह अग्नि (energy) जो सृष्टि-रचना में अश्व (खेंचने) का कार्य करती है। अभिप्राय यह है कि वह शक्ति जिससे सृष्टि-रचना का कार्य चल रहा है।

मन्त्रार्थ—(श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू) बाज के पंखों और हिरण की बाहों के वेग की गति से जाने वाला;

(अर्वन्) हे अर्वन्! [परमात्मा का तेज, सृष्टि रचना करने वाला];

(उत् यत् समुद्रात्) समुद्र अर्थात् अन्तरिक्ष से ऊपर को जाता हुआ;

(यत् अक्रन्दः) उसमें घोर शोर करता हुआ;

(प्रथमम् जायमानः) सबसे पहले उत्पन्न होने वाला;

(उत वा पुरीषात्) तू स्तुति अर्थात् चिन्तन करने योग्य है।

भावार्थ—आरम्भ में रचना कार्य करने वाला अश्व (अग्नि) उत्पन्न हुआ। वह घोर शब्द कर रहा था और अन्तरिक्ष में ऊपर को उठता हुई प्रतीत हुआ। वह सब की कामना पूर्ण करने वाला था। [अर्थात् सृष्टि रचना का कार्य करने वाला था।]

दूसरा मंत्र इस प्रकार है :—

यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत्।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट॥

(ऋ० १-१६३-२)

पदच्छेद—यमेन, दत्तम्, त्रितः, एनम्, आयुनक्, इन्द्रः, एनम्, प्रथमः, अधि, अतिष्ठत्।

गन्धर्वः, अस्य, रशनाम्, अगृभ्णात्, सूरात्, अश्वम् वसवः निः, अतष्ट॥

मन्त्रार्थ—(एनम् त्रितः प्रथमः इन्द्रः अतिष्ठत्) यह त्रित [तीन का गुट्ट परमाणु] पहले इन्द्र से अधिष्ठित था [नियंत्रित था]।

(यमेन दत्तम् एनम् आयुनक्) यम [नियंत्रणकर्त्ता परमात्मा] द्वारा दी हुई [शक्ति] ने जोप लिया [से अधिष्ठित हो गया]।

(गन्धर्वः अस्य सूरात् रशनाम् अगृभ्णात्) गन्धर्व ने [नियंत्रण में आये हुए परमाणु गन्धर्व हैं] बलवान् रश्मियों [लगामों] को स्वीकार कर लिया। तब परमात्मा की बलवान् रश्मियाँ [लगामें] अधिष्ठित हुईं तो उनमें गति उत्पन्न हुई।

(वसवः अश्वम् निः अतष्ट) हे वसुओ [बसे हुए अर्थात् प्रभावित परमाणुओ]! अश्व [रचना-शक्ति] को भलीभाँति काम में लाओ।

भावार्थ—परमाणु पर, पहले जब वे साम्यावस्था में थे, इन्द्र का नियंत्रण था। पीछे परमात्मा का तेज ऐसे अधिष्ठित हो गया जैसे लगाम से जुप जाता है। यह लगाम [परमात्मा की शक्ति] बहुत बलवान् है। इससे भलीभाँति कार्यारम्भ हो गया।

तीसरा मंत्र इस प्रकार है :—

असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि॥
(ऋ० १-१६३-३)

पदच्छेद—असि, यमः, असि, आदित्यः, अर्वन्, असि, त्रितः, गुह्येन, व्रतेन ।

असि, सोमेन, समया, वि-पृक्तः, आहुः, ते, त्रीणि, दिवि, बन्धनानि ॥

मन्त्रार्थ—(असि यमः असि आदित्यः असि अर्वन्) तू यम है । तू प्रकाश स्वरूप है । तू अर्वन् है । [यह उस तेज की स्तुति की है जो परमाणु पर अधिष्ठित हो, उसमें गति उत्पन्न करने लगा है । अभिप्राय यह कि उसके गुण, कर्म, स्वभाव का वर्णन किया गया है] ।

(गुह्येन व्रतेन त्रितः) गुप्त व्रत [ग्रहण किये कर्म से] त्रित [परमाणु] है ।

(असि सोमेन समया वि-पृक्तः) शान्त अवस्था की समीपता पृथक्-पृथक् हुई । [इन्द्र की जिस शक्ति से साम्यावस्था बनी थी, वह फट गयी] ।

(ते आहुः त्रीणि दिवि बन्धनानि) इस पर यह कहा जाता है कि अन्तरिक्ष में तीन बन्धन [संयोग] बने ।

भावार्थ—जब परमात्मा का तेज परमाणु पर अधिष्ठित हुआ तो वह जो पहले एक गुप्त शक्ति से एक गुट्ट था, उसमें गुप्त शक्ति फट गयी और परमाणु तीन प्रकार के संयोगों में हो गये । परमाणु फटे नहीं । उनका अन्तःमुख [इन्द्र] बंट गया । और परमाणु परस्पर निबन्धन [संयोग] बना बैठे । ये संयोग तीन प्रकार के थे और इनमें दिव्य गुण थे ।

चौथा मंत्र इस प्रकार है—

त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥
(ऋ० १-१६३-४)

पदच्छेद—त्रीणि, ते, आहुः, दिवि, बन्धनानि, त्रीणि, अप्-सु, त्रिणि अन्तः समुद्रे ।
उत-इव, मे, वरुणा, छन्त्सि, अर्वन् यत्र, ते, आहुः परमम्, जनित्रम् ॥

मन्त्रार्थ—(अन्तः समुद्रे) अन्तरिक्ष के मध्य में;

(आहुः ते त्रीणि दिवि बन्धनानि त्रीणि अप्-सु) कहा जाता है कि तीन प्रकार के संयोग [संगठन] अन्तरिक्ष में अपः हैं ।

(उत-इव मे वरुणाः छन्त्सि अर्वन्) और इस प्रकार मेरा पावन उच्चारण करने वाला तू अर्वः है ।

(आहुः ते परमम् जनित्रम्) यह कहा जाता है कि वह महान् [जगत्] का उत्पन्नकर्त्ता है ।

भावार्थ—ऊपर के मंत्र में जो परमाणुओं के तीन प्रकार के निबन्धन [संयोग] बने कहे गये हैं, वे अपः हैं । उनसे ही परमात्मा की पावन वाणी [भाषा और वेद] छन्दों के रूप में उच्चरित हुई और उनसे ही यह चलायमान जगत् उत्पन्न हुआ ।

यहां मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि अपः का अर्थ जल नहीं । वेद में कहीं भी यह शब्द जल के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ । निघण्टु (१-१२) में उदकों के नाम

दिये हैं। इनमें जल भी एक है। अपः भी इनमें है। उदक का अर्थ चिपकने वाला पदार्थ है और ऐसे पदार्थ जल के अतिरिक्त भी होते हैं। उदाहरण के रूप में पैट्रोल, तेल, घी इत्यादि अनेक पदार्थ हैं जो हाथ को चिपक जाते हैं। अतः उदक (जहाँ तक वेद का सम्बन्ध है) केवल जल नहीं है। अपः तो जल है ही नहीं। यह उदक अपने चिपकने के गुण से है। वैसे भी शब्द अपः बहुवचन स्त्रीलिंग है और जल एकवचन पुल्लिग है।

आधुनिक विज्ञान में वे तीन पदार्थ, जिनसे जगत् के सब पदार्थ बने हैं, परिमण्डलीय कण (atomic particles) कहे जाते हैं। इन तीन से अभी तक ज्ञात १०४ प्रकार के परिमण्डल बने हैं और जगत् के सब पदार्थ इन परिमण्डलों से बने हैं।

यहाँ इस मंत्र में कहा है कि इन तीन दिव्य गुण युक्त निबन्धनों से महान् जगत् बना है। अतः वैदिक परिभाषा के अणु ही परिमण्डलीय कण, तैजस्, वैकारिक और भूतादि अहंकार हैं। इनके नाम वर्तमान भाषा में इलेक्ट्रोन, प्रोटोन और न्यूट्रोन हैं। इनसे ही सब जगत् बना है।

पाँचवाँ मंत्र इस प्रकार है :—

इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानां सनितुर्निधाना।
अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभि रक्षन्ति गोपाः॥

(ऋ० १-१६३-५)

पदच्छेद—इमा, ते, वाजिन्, अव-मार्जनानि, इमा, शफानाम्, सनितुः, निधाना।

अत्र, ते, भद्राः, रशनाः, अपश्यम्, ऋतस्य, याः, अभि-रक्षन्ति, गोपाः ॥

मन्त्रार्थ—(ते वाजिन्) वे रचना को बढ़ाने वाले;

(इमा) वह जो [ऊपर जो कहा है कि तीन प्रकार के अपः हैं];

(अव-मार्जनानि) शुद्ध करने वाले हैं;

(इमा शफानाम् सनितुः निधाना) संचार स्थान पर रहते हुए अच्छी प्रकार पदार्थों को स्थापित करने वाले हैं;

(अत्र ते भद्राः) यहाँ वे कल्याण करने वाले हैं;

(रशनाः) रस अर्थात् भोग देने वाले हैं;

(अपश्यम्) देखता हूँ;

(ऋतस्य याः अभि-रक्षन्ति गोपाः) जो शाश्वत नियमों की रक्षा करते हैं।

भावार्थ—इस मंत्र में बताया है कि वे अपः किस प्रकार जगत् के पदार्थों की रक्षा करते हैं। वे उन नियमों का पालन करते हैं जो परमात्मा ने जगत्-रचना के लिये बनाये हुए हैं। इस मंत्र में अपः की स्तुति है।

छटा मंत्र इस प्रकार है :—

आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम्।
शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥
(ऋ० १-१६३-६)

पदच्छेद—आत्मानम्, ते, मनसा, आरात्, अजानाम्, अवः, दिवा, पतयन्तम्, पतङ्गम्।

शिरः, अपश्यम्, पथि-भिः सु-गेभिः, अरेणु-भिः, जेहमानम्, पतत्रि ॥

मन्त्रार्थ—(ते पतङ्गम् आत्मानम् मनसा आरात् अवः दिवा पतयन्तम् अजानाम्) तेरे पतंगे की भाँति उड़ते हुए आत्मा को समीप से मन के द्वारा अन्तरिक्ष से पृथिवी की ओर गिरता हुआ जानता हूं;

(सु-गेभिः अरेणु-भिः पथि-भिः जेहमानम् शिरः पतत्रि अपश्यम्) सुखकारक निर्मल पथ द्वारा यत्न करते हुए शिर को देखता हूँ। [सिर है सूक्ष्म शरीर से लिपटा हुआ जीवात्मा]।

इस मंत्र का अभिप्राय यह है कि पूर्व मंत्र में कहे अनुसार जब पृथिवी इत्यादि बन गई तो उस पर बसने के लिये आत्माएँ आईं। आत्मा सूक्ष्म शरीर में लिपटा हुआ, गिरता हुआ दिखाई दिया। सूक्ष्म शरीर में लिपटे हुए आत्मा को शिर कहा है।

सातवां मंत्र इस प्रकार है :—

अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः।
यदा ते मर्त्तो अनु भोगमानढादिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः॥

(ऋ० १-१६३-७)

पदच्छेद—अत्र, ते, रूपम्, उत्तमम्, अपश्यम्, जिगीषमाणम्, इषः, आ, पदे, गोः।

यदा, ते, मर्त्तः, अनु, भोगम्, आनट्, आत्, इत्, ग्रसिष्ठः, ओषधीः, अजीगः॥

मन्त्रार्थ—(अत्र आ पदे गोः इषः जिगीषमाणम्) यहाँ पृथिवी पर आये हुए अन्न खाने की इच्छा वाले [प्राणी];

(ते रूपम् उत्तमम् अपश्यम्) तेरे अति उत्तम रूप को देखता हूँ;

(यदः मर्त्तः आनट् ग्रसिष्ठः आत् इत्) जब वह प्राणी पेट भर कर खाने की इच्छा वाला यहाँ आता है;

(अनु भोगम् ओषधीः अजीगः) भोग के लिये वनस्पतियों को प्राप्त करता है।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि जब जीव पृथिवी पर उत्पन्न हो जाते हैं तो उनके प्रयोग के लिये वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं। और ये अर्वः [परमात्मा की शक्ति] की सहायता से ही होती हैं।

आठवाँ मंत्र इस प्रकार है :—

अनु त्वा रथो अनु मर्य्यो अर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम्।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥
(ऋ० १-१६३-८)

पदच्छेद—अनु, त्वा, रथः, अनु, मर्य्यः, अर्वन्, अनु, गावः, अनु, भगः, कनीनाम्।

अनु, व्रातासः तव, सख्यम्, ईयुः, अनु, देवाः, ममिरे, वीर्यम्, ते ॥

मन्त्रार्थ—(अर्वन् त्वा अनु रथः अनु मर्य्यः अनु गावः अनु भगः कनीनाम्) हे अर्वन्! तुम्हारे पीछे-पीछे आता है शरीर, प्राणी, गौएँ, ऐश्वर्य और कन्याएँ;

(तव सख्यम् ईयुः अनु देवाः अनु व्रातासः ते वीर्यम् ममिरे) तुम्हारा सखा भाव अनुकूलता से प्राप्त होता है। तेरे वीर्य [पराक्रम] से ही विद्वानों के समूह सत्य आचरण वाली भाषा बोलने लगते हैं।

मंत्र का भावार्थ है कि जब प्राणी सृष्टि होती है तब अन्न बन जाता है और उससे शरीर बन जाते हैं। शरीर में परमात्मा का तेज [अर्वः] प्राण के रूप में उपस्थित हो जाता है और वह अनुकूल कार्य करने लगता है। तब विद्वान् लोग मंत्र और भाषा का उच्चारण करने लगते हैं।

नवाँ मंत्र है—

हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत्।
देवा इदस्य हविरद्यमायन्यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत्॥

(ऋ० १-१६३-९)

पदच्छद—हिरण्य-शृङ्गः, अयः, अस्य, पादाः, मनः-जवाः, अवरः, इन्द्रः, आसीत्।

देवाः, इत्, अस्य, हविः-अद्यम्, आयन्, यः, अर्वन्तम्, प्रथमः, अधि-अतिष्ठत्॥

मन्त्रार्थ—(हिरण्य-श्रृङ्गः अयः अस्य पादाः मनः-जवाः अवरः इन्द्रः आसीत्) प्रकाशमान् सींग वाला [अर्वन्] और सुनहरी पाँव वाला, मन की गति वाला तू है। इन्द्र तुम से नीचे है। [यहाँ अर्वन् को सींग वाला कहा है। इसका अभिप्राय है कि अर्वन् की लहरें ऊँचे आयाम वाली हैं। यह चमकता हुआ चलता है। इस कारण इसे सोने के पाँव वाला कहा है];

(इत् अस्य हविः-अद्य्म देवाः आयन्) इसकी ग्रहण करने योग्य हवि [शक्ति] के लिये देवता आये ;

(यः अर्वन्तम् प्रथमः अधि-अतिष्ठत्) जो सबसे पहले वेगयुक्त अर्वन् अधिष्ठित हुआ था।

मन्त्र का अभिप्राय है कि परमात्मा का तेज (अर्वन्) जो सृष्टि-रचना के आरम्भ में कार्य करने के लिए उत्पन्न हुआ था, वह ऊँचे शृंग और चमकते हुए पाँव से मन की गति के साथ आता है। इन्द्र, पीछे बना, जब परमाणु की साम्यवस्था भंग हुई और यह निकला। वह अर्वन् से छोटा था।

दसवाँ मन्त्र इस प्रकार है :—

ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सं शूरणासो दिव्यासो अत्याः।
हंसा इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः॥
(ऋ० १-१६३-१०)

पदच्छेद—ईर्म-अन्तासः, सिलिक-मध्यमासः, सम्, शूरणासः, दिव्यासः, अत्याः।

हंसा-इव, श्रेणिशः, यतन्ते, यत्, आक्षिषुः, दिव्यम्, अज्मम्, अश्वाः।

मन्त्रार्थ—(सिलिक-मध्यमासः ईर्म-अन्तासः शूरणासः दिव्यासः सम् अत्याः) सूर्य के घोड़ों के समान [किरणों के समान] छलाँगें लगाता हुआ [लहरों में चलता हुआ] साथ-साथ चलता है ;

(हंसा-इव श्रेणिशः यतन्ते) हंसों की डारों जैसा चलता है।

(यत् दिव्यम् अज्मम् अश्वा: आक्षिषु:) जिससे दिव्य जाने योग्य मार्ग पर विद्वान् लोग विस्तार पाते हैं। [यहाँ अश्व का अर्थ विद्वान् है और विस्तार पाने का अभिप्राय है ज्ञान में विस्तार पाना।]

मन्त्र का अभिप्राय यह है कि अर्वन् इस प्रकार लहरों में आता है जैसे सूर्य की रश्मियाँ आती हैं। कहा है कि काँपता हुआ, अभिप्राय यह कि लहराता हुआ पृथिवी पर आता है और फिर उससे विद्वान् लोगों को ज्ञान प्राप्त होता है।

ग्यारहवाँ मन्त्र है :—

तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन्तव चित्तं वात इव ध्रजीमान्।
तव श्रृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति॥

(ऋ० १-१६३-११)

पदच्छेद—तव, शरीरम्, पतयिष्णु, अर्वन्, तव, चित्तम्, वात-इव, ध्रजीमान्।

तव, श्रृङ्गाणि, वि-स्थिता, पुरु-त्रा, अरण्येषु, जर्भुराणा, चरन्ति॥

मन्त्रार्थ—(अर्वन् तव शरीरम् पतयिष्णु) हे अर्वन्! तेरा शरीर गतिशील है। [ऊपर अर्व: को प्राण कहा है। प्राण जिस शरीर में जाता है उसमें गति उत्पन्न करता है और कार्य की सामर्थ्य देता है। इसलिए कहा है कि जिस शरीर में अर्व: जाता है, वह गतिशील और क्रियाशील हो जाता है।]

(तव चित्तम् वात:-इव) तेरा चित्त वायु की भाँति

वेग से चलने वाला है। [जिस चित्त में परमात्मा की शक्ति है, वह अति वेग गामी होगा।] ;

(तव शृङ्गाणि वि-स्थिता, पुरु-त्रा अरण्येषु जर्भुराणा चरन्ति) तेरे शृंग लहरों के आयाम भलीभांति स्थित हुए चलते हैं।

मन्त्र का अभिप्राय यह है कि रचना कार्य करने वाली शक्ति अति वेग से कार्य करती है। जिसमें वह शक्ति संयुक्त हो जाती है, वह चलायमान और चेतन बन जाता है।

बारहवाँ मन्त्र इस प्रकार है :—

उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः
अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः॥
(ऋ० १-१६३-१२)

पदच्छेद—उप, प्र, अगात्, शसनम्, वाजी, अर्वा, देवद्रीचा, मनसा, दीध्यानः।

अजः, पुरः, नीयते, नाभिः, अस्य, अनु, पश्चात्, कवयः, यन्ति, रेभाः॥

मन्त्रार्थ—(वाजी अर्वा उप प्र-अगात्) अर्वः—रचना कार्य करने वाला भली प्रकार समीप आता है ;

(शसनम्) [इस संसार पर] शासन करने के लिए ;

(मनसा देवद्रीचा दीध्यानः) देव [परमात्मा] के अनुकूल मन से, लग्न से ध्यान करता हुआ ;

(अजः पुरः नीयते नाभिः अस्य) अजन्मा, पहले ही इस लग्न से रचना कार्य पर, केन्द्र स्थान पर ले जाया गया है।

(पश्चात् कवयः रेभा अनुयन्ति) तदनन्तर भाषा विज्ञान के जानने वाले ऋषि प्राप्त होते हैं ।

मन्त्र का अभिप्राय है कि अर्वः रचना कर्म करने वाली अनादि शक्ति है और जब यह रचना हो जाती है और मनुष्य उत्पन्न हो जाते हैं तो भाषा विज्ञान के जानने वाले उत्पन्न हो जाते हैं ।

तेरहवाँ मन्त्र इस प्रकार है—

उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वां अच्छा पितरं मातरं च ।
अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथा शास्ते दाशुषे वार्य्याणि ।।

(ऋ० १-१६३-१३)

पदच्छेद—उप, प्र, अगात्, परमम्, यत्, सध-स्थम्, अर्वान्, अच्छ, पितरम्, मातरम्, च ।

अद्य, देवान्, जुष्ट-तमः, हि, गम्याः, अथ, आ, शास्ते, दाशुषे, वार्य्याणि ।।

मन्त्रार्थ—(यत् अर्वान् परमम् सध-स्थम् प्र अगात्) हे अर्वन् ! जब परम [महान्] सामने आया ; [जगत् बन गया] ;

(अच्छ पितरम् मातरम् च) और श्रेष्ठ माता-पिता [बन गये] ;

(अद्य देवान् जुष्ट-तमः हि गम्याः) अब दिव्य गुण वाले प्रसन्नता से निश्चय से जाते हैं ;

(अथ आ शास्ते दाशुषे वार्य्याणि) और वरने योग्य को देने के लिए कहता हूँ ।

मन्त्र का अभिप्राय यह है कि जब सृष्टि कार्य करने लगी तो जो श्रेष्ठ गुण वाले लोग थे, वे प्रसन्नता से कार्य में लग गये। और जो जो उत्तम पदार्थ उनको मिलने चाहिये थे, वे मिलने लगे।

इस पूर्ण सूक्त में संक्षेप में सृष्टि-रचना की प्रक्रिया लिखी है। इस सबका वर्णन हम इस प्रकार कर सकते है :—

(१) अश्व-अग्निः और त्रित पूर्व में स्थित थे। अश्वाग्निः अनादि, अजर है। त्रित भी अनादि और अजर है। त्रित का अभिप्राय है—'सत्त्व रजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः'।

(२) अश्वाग्निः प्रकट हुई और गर्जना करती हुई एवं तीव्र गति से अन्तरिक्ष में फैल गई। त्रित पर पहले इन्द्र का अधिकार था। पीछे अश्वाग्नि उस पर आरूढ़ हो गई।

(३) अश्वाग्निः के प्रभाव से त्रितों की साम्यावस्था भंग हुई और उनके तीन प्रकार के निबन्धन बने। ये अपः हुए और इन्होंने सब संसार बनाया।

(४) जब संसार बना तो अपः सूर्य की किरणों के रूप में पृथिवी पर बरसे और माता-पिता बन गये।

(५) माता-पिता से प्राणी रचना होने लगी।

आधुनिक विज्ञान रचना कार्य का इस प्रकार वर्णन करता है :—

(१) कौस्मिक किरणें और कौस्मिक डस्ट पहले

उपस्थित थीं। कौस्मिक डस्ट में ऋण विद्युत के आवेश थे। कुछ में धन विद्युत के आवेश भी थे और कुछ शून्य [तम्] आवेश वाले कण थे।

(२) इन आवेशों और बिना आवेशों वाले कणों से, जो भार-रहित हैं, ऐटम बने।

[यहाँ इतना स्मरण रखना चाहिए कि वैदिक विचार से, कौस्मिक डस्ट से लेकर ऐटम तक सब अणु ही हैं, क्योंकि ये सब परमाणु से बड़े हैं।]

(३) प्रथम परिमण्डल हाइड्रोजन के बने। हाइड्रोजन से नाइट्रोजन के परिमण्डल बने।

(४) नाइट्रोजन से कार्बन (C_{14}) रेडियो-ऐक्टिव परिमण्डल बनते हैं। और उनसे सामान्य कार्बन (C_{12}) के परिमण्डल बन जाते हैं।

(५) इस प्रकार एक से दूसरे, दूसरे से तीसरे परि-मण्डल बनते चले जाते हैं और फिर उनसे भारी हवाएँ, तरल पदार्थ [जल आदि] तथा ठोस पदार्थ [पार्थिव आदि] पदार्थ बन जाते हैं।

आधुनिक विज्ञान कौस्मिक डस्ट से पहले तथा सृष्टि के प्रलय के विषय में अभी पता नहीं कर सका है।

वेद विज्ञान कौस्मिक डस्ट से पहले की अवस्था तथा प्राणी की उत्पत्ति का भी वर्णन करता है।

अभी तक मैंने सृष्टि-रचना के विषय में सायंस और वेद ज्ञान के अंग 'कल्प' के विषय में एक अति संक्षिप्त वर्णन किया है। अब मैं आपको विज्ञान के कुछ उन स्थलों

के विषय में बताना चाहता हूँ, जिनके विषय में आधुनिक विज्ञान अभी कुछ नहीं जानता।

परमात्मा के तेज के विषय में वैज्ञानिकों को एक धुंधला-सा भास ही हुआ है। वह इस प्रकार है।

यह मैं बता चुका हूँ कि पूर्ण जगत् तीन प्रकार के कणों (particles) से बना है। ये कण अपः हैं। आधुनिक विज्ञान इनको परिमण्डलीय कण (atomic particles) कहता है। इनमें इलेक्ट्रोन पर ऋण-आवेश (negative charge) होता है और प्रोटोन पर धन-आवेश (positive charge) होता है।

अब यह पता चला कि इलेक्ट्रोन के रूप-राशि के कण धन आवेश वाले भी होते हैं और प्रोटोन के रूप-राशि वाले कण ऋण आवेश वाले भी होते हैं। वैज्ञानिक इनको 'ऐण्टी-मैटर' का नाम देते हैं।

अभिप्राय यह है कि ह्रस्व और दीर्घ अर्थात् इलेक्ट्रोन और प्रोटोन दोनों में ऋण आवेश वाले भी होते हैं और धन आवेश वाले भी होते हैं। इनके विषय में कहा है :—

......however, if an atom of antimatter were to collide with an atom of ordinary matter, the two would immediately undergo mutual and complete annihilation with π mesons and other unstable particles being created. Within a fraction of a second, all of these unstable particles would be spontaneously transformed into radiant energy—gamma rays and stable, massless particles—called neutrinos—

Enc. Britt. Ed. 1968, Vol 2, page 69-C

अर्थात्—यह देखा गया है कि जब 'ऐण्टी-मैटर' (उलटे द्रव्य) के कण मंटर (द्रव्य) के कणों से टकरा जायें तो दोनों एक दूसरे को तुरन्त विनष्ट कर देते हैं। उनसे 'मीसोन' और अन्य न-टिकाऊ (unstable) कण बन जाते हैं और एक सैकिण्ड के एक अंश में ही सब न-टिकाऊ कण स्वयमेव प्रकाशमान शक्ति में, जिसे गामा (γ) किरणें कहते हैं, में बदल जाते हैं और फिर एक टिकाऊ (stable) द्रव्यमानहीन (massless) कण बन जाते हैं, जिनको 'न्यूट्रिन्स' का नाम दिया है।

इसका अभिप्राय यह है कि जब ऋण और धनआवेश एक दूसरे को निःशेष (neutralize) कर देते हैं तो परमाणु पुनः साम्यावस्था में आ जाता है और जिस परमात्मा के तेज ने परमाणु की साम्यावस्था भंग की थी, वह त्रित से पृथक् हो अन्तरिक्ष में विलीन हो जाता है। दूसरे शब्दों में—'आनीत-अवातम्' की अवस्था हो जाती है।

वैज्ञानिकों ने तो केवल यह पता किया है कि मैटर और ऐण्टी-मैटर के संयोग से गामा किरण और 'न्यूट्रिन्स' बनते हैं और गामा किरण अन्तरिक्ष में विलीन हो जाती है।

यह मेरी विवेचना है कि सांख्य में वर्णित और वेद मन्त्रों में प्रतिपादित परमात्मा का तेज तथा त्रित का संयोग सृष्टि के अनेकानेक पदार्थ हैं और जब इनका संयोग टूट जाता है, तब पुनः परमात्मा का तेज और त्रित [परमाणु] रह जाते हैं।

स्थूल जगत्

एक अन्य बात का वर्णन यहाँ कर देना मैं उचित समझता हूँ। साँख्य दर्शन में कहा है :—

स्थूलात् पञ्चतन्मात्रस्य ॥ (सां० १-६३)

अर्थात् स्थूलों को देखने से पंच तन्मात्रों का ज्ञान होता है। इसका अभिप्राय यह है कि संसार के स्थूल पदार्थों को देखने पर पंच तन्मात्राओं के होने का प्रमाण मिलता है।

आधुनिक विज्ञान भी सूक्ष्म से स्थूल होने में पाँच शक्तियों को कारण मानता है।

आधुनिक विज्ञानानुसार पाँच शक्यिताँ इस प्रकार हैं :—

(अण्वन्तर शक्ति (interatomic energy) जिससे तैजस् अहंकार, वैकारिक अहंकार और भूतादि अहंकारों के चारों ओर घूम रहे हैं।

(२) रासायनिक शक्ति (chemical afinity) जिससे रासायनिक पदार्थ बनते हैं।

(३) अणुओं के विकम्पित होने की शक्ति (molecular dynamics)। इससे ही ठोस, तरल तथा वायवी पदार्थ बनते हैं।

(४) गुरुत्व-आकर्षण (gravity)।

(५) चुम्बकीय शक्ति (magnetic force), जिसे मरुत भी कहा है।

ये पाँचों तन्मात्र-समूह हैं जिनका उल्लेख सांख्य के ऊपर के सूत्र में हुआ है।

दोनों विज्ञानों में अन्तर यह है कि इन शक्तियों का उद्गम स्थान वर्तमान विज्ञान नहीं जानता और वेद विज्ञान इसे इन्द्र से उत्पन्न मानता है।

जीव निर्जीव

आधुनिक विज्ञान जीव तथा निर्जीव में अन्तर स्वीकार नहीं करता। वह इसे (जीवन शक्ति को) प्रकृति का एक रूप ही समझता है। भूमण्डल के प्रायः सभ्य देश अरबों रुपये प्रतिवर्ष इस बात पर व्यय कर रहे हैं कि निर्जीव प्रकृति को सजीव करके दिखाया जा सके। अभी तक स्थिति यह है कि वेद विज्ञान का कथन ही युक्तियुक्त कहा जा सकता है। वह इस प्रकार है :—

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पति सप्तपुत्रम् ।।

(ऋ० १-१६४-१)

पदच्छेद—अस्य, वामस्य, पलितस्य, होतुः, तस्य, भ्राता, मध्यमः, अस्ति, अश्नः।

तृतीयः, भ्राता, घृत-पृष्ठः, अस्य, अत्र, अपश्यम्, विश्पतिम्, सप्त-पुत्रम् ।।

इस मन्त्र का देवता विश्वेदेवाः है।

मन्त्रार्थ—(अस्य वामस्य पलितस्य) इस सुन्दर बूढ़ा हो जाने वाले का;

(तस्य मध्यमः भ्राताः होतुः अस्यः अस्ति) बीच में उसका भाईः कर्म करने वाला और भोग करने वाला है;

(अत्र अस्य तृतीयः भ्राता घृत-पृष्ठः विश्पतिम् सप्त-पुत्रम्) उसका तीसरा भाई यहाँ बल देने वाला और पालन करने वाला, सात पुत्रों वाला है।

मन्त्र का अभिप्राय यह है कि प्राणी का शरीर तो क्षरित होने वाला है। परन्तु उसके अन्दर प्रकृति, जिससे शरीर बना है, के समान आयु वाला उसका एक भाई तो जीवात्मा है जो प्राणी में रहता हुआ कर्म करता है और कर्म का फल भोगता है। एक अन्य भाई है जो प्राणी की रक्षा करता है और उसका पालन करता है। वह शरीर में अपने सात पुत्रों अर्थात् अपनी शक्ति के सात रूपों से [प्राणी] की सहायता करता है।

इस विषय में वर्तमान विज्ञान कुछ नहीं जानता।

ऊपर दिये मन्त्र में कहा है कि प्रकृति शरीर है और इसमें दो आत्म-तत्त्व जीवात्मा और परमात्मा का वास है। वेदान्त दर्शन में इसे युक्ति से सिद्ध किया है। कहा है :—

गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् ॥

(वे० द० १-२-११)

अर्थात्—हृदय की गुहा में दो आत्म तत्त्व हैं। इनका [कर्म देख कर] दर्शन होता है।

प्रलय

वर्तमान विज्ञान यह नहीं जानता कि जगत् का विघटन

कैसे होगा ? इस विषय में वेद विज्ञान का सार माण्डूक्य उपनिषद् में वर्णित है। माण्डूक्य उपनिषद् में जगत् की चार अवस्थाओं का वर्णन किया गया है।

(१) एक है जाग्रत अवस्था। यह जगत् की वर्तमान अवस्था है। जब सब कुछ कार्य करता हुआ दिखाई देता है।

(२) दूसरी अवस्था है स्वप्न अवस्था। ये वर्तमान रचित अवस्था से पूर्व अथवा रचित अवस्था के उपरान्त की अवस्थाएँ हैं। इसमें प्राणी सृष्टि नहीं रहती। स्थावर, स्वेदज, अण्डज और जेरज चार प्रकार की सृष्टि नहीं होती। परन्तु पृथिवी, सूर्य, चन्द्र, तारागण ऐसे होते हैं जैसे वर्तमान अवस्था में हैं।

(३) तीसरी अवस्था है सुषुप्ति अवस्था। इसमें प्रकृति के बने पदार्थ भी नहीं होते। परन्तु अवशेषों की-सी अवस्था होती है। महत्, अहंकार और तन्मात्राएँ रह जाती हैं।

(४) चौथी है तुरीय अवस्था। इसमें प्रकृति परमाणु रूप में हो जाती है। परमात्मा का प्रकृति से योग नहीं रहता।

सब कुछ तमोभूत अन्धकार से आच्छादित हो जाता है। जीवात्मा सूक्ष्म और स्थूल दोनों प्रकार के शरीरों से रहित होने से निष्क्रिय (सुषुप्ति अवस्था में) हो जाता है। केवल परमात्मा ही सक्रिय होता है।

निष्कर्ष

अति प्राचीन काल में जब पृथिवी पर ऐसी अवस्था बन गयी थी कि प्राणी बन सकते थे और जीवित रह सकते थे, तब पहले बनस्पितयाँ उत्पन्न हुईं, तदनन्तर पशु-पक्षी उत्पन्न हुए और अन्त में मनुष्य सृष्टि हुई। यह परम्परा है कि उस समय वेद मनुष्य को दिए गये। किसने कहे, कैसे कहे, किसके द्वारा कहे गये, इस विषय पर कुछ न कहते हुए भी इतना कहने में संकोच नहीं हो सकता कि जो कुछ इन लाखों वर्ष में कुशल, चतुर कहे जाने वाले विद्वानों ने मनुष्य के लिए ज्ञान संग्रह किया है, उससे अधिक ज्ञान वेदों में वर्णित है।

यह तो स्पष्ट ही है कि भूमि पर पड़े कोश को कोई उठाकर प्रयोग में न लाये तो यह कोश का दोष नहीं है। और फिर उस कोश को प्रयोग में लाने वाला उसका निर्माता नहीं कहा जा सकता। यही बात ज्ञान की है। वेद ज्ञान बहुत प्राचीन काल में उपलब्ध हुआ था। कोई उसको उठाकर प्रयोग करने वाला, कदाचित् नहीं आया। वर्तमान युग के शिल्पी (mechanics and technicians) उस व्यक्ति की भाँति हैं जो चिरकाल से पड़े कोष का प्रयोग करने लगते हैं। वेद ज्ञान उस कोष की भाँति ही पड़ा था। यदि यह कहें तो अधिक ठीक होगा कि ईश्वरीय ज्ञान तो तब भी था और अब भी है, परन्तु उसका उपयोग वर्तमान युग के तकनीकी विद्या के जानने वालों ने किया है।

मैं ऐसा मानता हूँ कि परमात्मा का ज्ञान छन्दों [ऊर्जा की तरंगों] में निरन्तर दिया जा रहा है। इसका प्रयोग किसी ने प्राचीन में काल किया था अथवा नहीं किया था, यह वर्तमान लेख का विषय नहीं है।

मेरा तो यही कहना है कि ज्ञान तो था, चाहे उसका प्रयोग हुआ अथवा नहीं हुआ। इसके साथ ही मैं यह भी मानता हूँ कि वर्तमान युग के वैज्ञानिकों ने, जिस किसी ने भी मूल विज्ञान (fundamental science) में कोई नई बात पता की है तो वह भी ऋषि ही है। मैं उसे आँशिक ऋषि मानता हूँ। हमारे ग्रन्थों में यह है कि अवतार हुए हैं और अंशावतार भी हुए हैं।

अवतार से मेरा अभिप्राय परमात्मा का भू-तल पर अवतरण होना नहीं है। वरन् मुक्त आत्माओं में से किसी का इस पृथिवी पर मानव कल्याण के लिए आना है। जो महान् गुण सम्पन्न अवतार हुए, वे पूर्ण अवतार माने जाते हैं और जिनमें एक-आध विषय की ही विशेषता होती है, उन्हें अंशावतार कहा है। इसी प्रकार वर्तमान युग के वैज्ञानिक अपने-अपने विषय के विशेषज्ञ होने के कारण अंशावतार समझे जाने चाहियें। इस प्रकार मैं अरिस्टोटल, न्यूटन, औलिवर लौज, रदर-फोर्ड, मैडम क्यूरी, ईन्स्टीन इत्यादि को भी आंशिक ऋषि मानता हूँ।

परमात्मा का ज्ञान निरन्तर प्रसारित हो रहा है। जो ज्ञानवान् व्यक्ति हैं, वे उसको समझ सकते हैं।

शाश्वत संस्कृति परिषद् की सदस्यता

आजीवन सदस्यता

कोई भी व्यक्ति जो परिषद् के उद्देश्यों में विश्वास रखता है एक साथ तीन सौ रुपये देकर परिषद् का आजीवन सदस्य बन सकता है।

परिषद् द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'शाश्वत वाणी' आजीवन सदस्यों को जीवन पर्यन्त निःशुल्क प्राप्त होगी।

परिषद् के आगामी सभी प्रकाशन आजीवन सदस्यों को बिना मूल्य प्राप्त होते रहेंगे।

साधारण सदस्यता

कोई भी व्यक्ति सोलह रुपये वार्षिक देकर परिषद् का साधारण सदस्य बन सकता है।

साधारण सदस्य को परिषद् की पत्रिका 'शाश्वत वाणी' वर्ष में प्रकाशित होने वाले तीन विशेषांकों सहित प्राप्त होती रहेगी।

मंत्री—
शाश्वत संस्कृति परिषद्,
३०/९० कनाट सरकस, नई दिल्ली
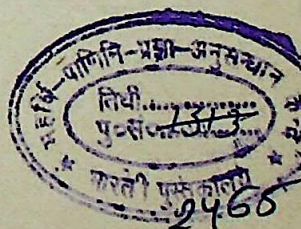
परिषद् के प्रकाशन।

श्री गुरुदत्त रचित

धर्म संस्कृति तथा राज्य (अप्राप्य)
भारतीयकरण एक अध्ययन (अप्राप्य)
भारतीय राजनीति विभिन्न कालों में (अप्राप्य)
धर्म तथा समाजवाद
प्रजातांत्रिक समाजवाद
इतिहास में भारतीय परम्पराएं
ब्रह्मसूत्र सरल सुबोध भाषा भाष्य
सांख्य दर्शन सरल सुबोध भाषा भाष्य
सृष्टि-रचना
वेद प्रवेशिका
विज्ञान और विज्ञान
भाव और भावना (संस्मरण)
भाग्य चक्र (संस्मरण)
प्रजातन्त्र अथवा वर्णाश्रम व्यवस्था
भारत में राष्ट्र
भारत गान्धी नेहरू की छाया में
न्याय-दर्शन सरल सुबोध भाषा भाष्य (प्रेस में)
भगवद्गीता सरल सुबोध भाषा भाष्य (,, ,,)

पं० राजाराम शास्त्री रचित

नवदर्शन परिचय
न्याय-प्रवेशिका
कठोपनिषद्

———